7 A

मरुभूमि में

संसाधन संरक्षण व प्रबन्धन

राजेश कुमार गोयल

2012

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान

(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद)

जोधपुर 342 003, राजस्थान

फसलें ऐसी हो जो कम पानी व कम समय में तैयार हो जाये तथा इनमे सूखा सहन करने की क्षमता हो। मरुस्थल में ऊपरी सतह पर मृदा जल की कमी होने के कारण ऐसे क्षेत्रों में गहरे जड़ों वाली फसलें ज्यादा उपयुक्त रहती हैं । फसलों की बुआई सही समय पर करनी चाहिये । ऐसा न करने से फसलों की बढवार के लिये अनुकूल अवधि कम रह जाती है और फसल के पकने के समय सूखे का सामना करना पड़ सकता है। रेतीली मिट्टियों के लिये बाजरी, मूंग, मोठ, ग्वार आदि फसलें उपयुक्त रहती है। इन फसलों की किस्म विशेष का चुनाव भूमि व उपलब्ध जल आदि के आधार पर किया जा सकता है।

पौध संख्या एवं रक्षण

शुष्क क्षेत्रों में पानी की कमी के कारण पौधों की संख्या सिचिंत कृषि की तुलना में 10 से 15 प्रतिशत कम रखी जाती है । यदि अधिक सूखे की स्थिति उत्पन्न हो रही हो तो पौधों की संख्या 20 से 30 प्रतिशत तक कम की जा सकती है। पौध संख्या कम करने से घटी हुई पौध संख्या को ज्यादा पानी उपलब्ध रहेगा। पौध संख्या कम करने से उत्पादन में हुई कमी को कम पौधों को ज्यादा पानी उपलब्ध रहने से उत्पादन में हुई वृद्धि द्वारा पूरा किया जा सकता है। बुआई से पूर्व बीजोपचार किया जाना आवश्यक है। 2 से 3 वर्ष के अन्तराल पर जैविक खाद का प्रयोग भी फसल उत्पादन में काफी सहायक होता है।

समय पर खरपतवार निकालना

खरपतवार खेत में उपलब्ध जल व पोषक तत्वों को शीघ्रता से ग्रहण करते है फलस्वरुप फसलों को आवश्यक पौषक तत्व व पानी पर्याप्त मात्रा में नही मिल पाते है। अतः फसलों को पर्याप्त नमी व पौषक तत्व उपलब्ध कराने हेतु समय पर खेत को खरपतवारों से मुक्त कर देना चाहिए। खरपतवार को उपयुक्त फसल चक्र अपनाते हुए खुरपी, कल्टीवेटर या खरपतवार नाशक दवाइयों का प्रयोग करके नियंत्रित किया जा सकता है।

टिब्बा स्थिरीकरण

थार मरूस्थल में रेतीले टिब्बे बहुतायत में पाये जाते हैं। गर्मी के मौसम में तेज हवाओं के चलने के साथ इन टिब्बों की रेत उडकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर आसानी से पहुॅच जाती है। यह रेत कृषि योग्य भूमि मकान सडकों आदि के लिये गम्भीर खतरा पैदा कर सकती है। इसलिये इन टिब्बों का स्थिरीकरण बहुत आवश्यक है। टिब्बों का स्थिरीकरण इन पर स्थानीय वनस्पति लगाकर किया जा सकता है। टिब्बों पर वनस्पति को पशुओं से सुरक्षित रखने के लिये टिब्बों के चारों ओर बाड लगा देनी चाहिये। इसके अतिरिक्त टिब्बो की ओर वायु के आने की दिशा में 5 मीटर गुणा 5 मीटर में शतरंज की विसात के आकार में सूक्ष्म वायु अवरोध स्थापित कर देने चाहिये। सूक्ष्म वायु अवरोधों को स्थापित कर देने के लिये घासों में सेवन व अंजन धामन झाडियों में कैर, फोग, बोर्डी व आक व पेडों में बबूल, कुमठ, विलायती बबूल व इजरायली बबूल लगा देने चाहिये।

वायु अवरोधक रक्षक पट्टियाँ

वायु अवरोधक रक्षक पट्टियॉ वास्तव में रोपित पेडों और झाडियों के सजीव अवरोध होते हैं। ये वायु के वेग, वाष्पीकरण और मृदा क्षरण को रोकने में सहायक होते हैं। रक्षक पट्टियों को वायु की सामान्य दिशा के लम्बवत् पंक्तिबद्ध लगाना चाहिए। वर्ष में यदि वायु एक से अधिक सामान्य दिशा से बहती हो तो एक से अधिक रक्षक पट्टियों का रोपण करना चाहिए।

रक्षक पट्टियों से अधिकतम सुरक्षा तब मिलती है जब वायु के बहने की दिशा इनके ठीक लम्बवत् हो।रक्षक पट्टियों की चौडाई 3 से 5 पंक्तियाँ या अधिक हो सकती है। रक्षक पट्टियॉ जितनी अधिक ऊची होगीं उतनी अधिक दूरी तक वायु के वेग से रक्षा होगी। प्रायः वायु बहने की दिशा में 15 से 20 गुणा अवरोध की ऊँचाई के बराबर तक व वायु आने की दिशा में 5 गुणा पट्टी की ऊँचाई के बराबर की दूरी तक वायु के वेग को कम करती है। 5 पंक्तियॉ वाली रक्षक पट्टी के लिए मध्य पंक्ति के लिए बबूल, सिरस, नीम, शीशम व खेजडी के पेड लगाये जा सकते हैं। मध्य पंक्ति के दोनों ओर वाली पंक्तियों में कुमठ, विलायती बबूल व इजरायली बबूल लगा देने चाहिये। बाहरी पंक्तियों में कैर, फोग, बोर्डी की झाडियॉ लगायी जा सकती हैं।

नाड़ी

नाड़ी इस क्षेत्र में जल दोहन व संग्रहण की एक प्राचीन पद्धती है। नाड़ी में इकठ्ठा किया गया जल पशुओं एवं मानव के पीने के उपयोग में लाया जाता है। अभी भी ज्यादातर ग्रामीण हिस्सों में पीने के पानी के लिए इन्हीं ढ़ॉचों का प्रयोग किया जाता है। नाड़ियों को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारकों में उच्च वाष्पीकरण दर एवं रिसाव से हानि, उच्च अवसाद जमाव दर एवं जल का दुरुपयोग है। इस समस्या के निराकरण हेतु संस्थान ने उन्नत नाड़ी के प्रारूप का विकास किया है। इसमें जल अधिग्रहण क्षेत्रा मे पेड़ पौधे लगाना एवं अवसाद को बहाव क्षेत्र से पहले ही रोकना है। इसके अतिरिक्त नाड़ी में एल.डी.पी.ई. की परत लगा कर जल रिसाव को भी कम किया जा सकता है। प्रदूषण रोकने हेतु नाड़ी क्षेत्र में पशुओं एवं मानवों के आवागमन पर अंकुश लगाया जा सकता है। वाष्पीकरण को कम करने के लिए छायादार वृक्षों का स्थापन काफी प्रभावशाली होता है।

खड़ीन

ऊपरी सतह एवं चट्टानी तल से वर्षा जल बहाव के साथ–साथ चिकनी मिट्टी निचली सतहों पर इकठ्ठी हो जाती है। ऐसे स्थानों पर खेत की निकासी की तरफ मिट्टी के बॉध उचित अधिप्लवन मार्ग (Surpassing arrangement) के साथ यदि बनाये जाए तो इन स्थानों को उपजाऊ खेतों में बदला जा सकता है। इन्हें प्रादेशिक भाषा में खड़ीन कहा जाता है। इस प्रकार की जल दोहन तकनीक एवं भू उपयोग जैसलमेर जिले में व्यापक है। वर्षा कम होने की स्थिति में जल अधिग्रहण क्षेत्र एवं सिंचित क्षेत्र का अनुपात अधिक हो जाता है।

रेतीले खेतों में इन सभी कृषि तकनीकों को अपना कर अच्छी पैदावार ली जा सकती हैं। इन तकनीकों को भूमि विशेष के अनुसार एकीकृत रुप से या अलग अलग रुप में अपनाकर शुष्क क्षेत्रों में मृदा व जल संरक्षण किया जा सकता है व फसलों की उत्पादकता में दीर्घकालिक स्थायित्व प्राप्त किया जा सकता है ।

प्रकाशक : निदेशक, केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर 342 003
सम्पर्क सूत्र : दूरभाष +91–291–2786584 (कार्यालय)
+91–291–2788484 (निवास), फैक्सः +91–291–2788706
ई–मेल : director@cazri.res.in
वेबसाईट : http://www.cazri.res.in
सम्पादन समिति : एम.पी. सिंह, आर.एस. त्रिपाठी, बी.के. माथुर, एम.पी. राजोरा एवं एस. रॉय

काजरी किसान हेल्प लाईन : 0291–2786812

Evergreen 94141 28647

मिट्टी व पानी किसी भी फसल के उत्पादन के लिये मूलभूत आवश्यकताऐं होती हैं। इनमें से किसी भी तत्व के अभाव में फसल उत्पादन संभव नहीं है। समय के साथ–साथ मिट्टी की उत्पादकता में भी कमी आती है इसलिये उत्पादक भूमि व जल के उचित संरक्षण के बिना फसल उत्पादन में दीर्घकालीन स्थायित्व नहीं ला जा सकता है। भौगोलिक क्षेत्रफल की दृष्टि से राजस्थान भारत का सबसे बडा राज्य है लेकिन औसत वार्षिक वर्षा के आधार से यह राज्य अन्य राज्यों की तुलना में भारत में सबसे पीछे है। राज्य में औसत वार्षिक वर्षा 60 सेमी देश की औसत वार्षिक वर्षा से आधी है। कम पानी व ज्यादा गर्मी यहॉ के जीवन के दो मुख्य बिन्दु है। राज्य का पश्चिमी भू–भाग जो थार मरुस्थल के नाम से भी जाना जाता है वहॉ जल संकट की समस्या और भी गम्भीर हो जाती है। इस क्षेत्र के अधिकांश भू–भाग में भूजल अत्यधिक गहरा व लवणीय है। मरुभूमि में सिंचाई के अन्य परम्परागत साधन जैसे नदी, तालाब, नहरों आदि का पूर्णतः अभाव है। उच्च वाष्पीकरण दर व लगातार तेज चलने वाली आंधियॉ इस भू–भाग को और भी अधिक विकट बना देती हैं। अतः यहॉ खेती पूरी तरह से वर्षा पर आधारित है। मरुभूमि में वर्षा ऋतु में वर्षा दिवस प्रायः 10 से 15 होते है। वर्षा अत्यधिक कम लेकिन प्रायः तेज व अनियमित होती है। भूमि पर पर्याप्त वनस्पति न होने के कारण तेज वर्षा होने या हवाऐं चलने पर जल और वायु द्वारा मृदा का क्षरण होता है। इन सभी विपरीत परिस्थितियों के कारण राज्य के इस भू–भाग को प्रायः सूखे व अकाल का सामना पडता है। विश्व के कुल जल उपयोग का लगभग दो तिहाई भाग कृषि कार्यो में उपयोग होता है। कृषि कार्यो में जल की भारी अपव्ययता का मुख्य कारण कृषि की अकुशल तकनीकियां है। जरूरत से अधिक जल से न केवल जल हानि होती है बल्कि इससे भूमि की उत्पादकता में भी कमी आती है। ऐसी परिस्थिति में स्थानीय संसाधनों के उचित संरक्षण व प्रबन्धन द्वारा ही फसल उत्पादन किया जा सकता है। उत्पादन में संसाधनों के महत्व को ध्यान रखते हुये भारत सरकार ने मृदा व जल संरक्षण कार्यो की शुरूआत प्रथम पंचवर्षीय योजना के आरम्भ से ही कर दी थी। केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर ने पिछले कई वर्षो की शोध के द्वारा वर्षा जल व मृदा संरक्षण की तकनीकों को और अधिक प्रभावशाली व उन्नत बनाया है। संसाधन संरक्षण व प्रबन्धन की इन तकनीकों को अपनाकर विषम परिस्थितियों में भी भरपूर फसल पैदा की जा सकती है।

समोच्च खेती

परम्परागत विधि में प्रायः खेती ढाल के समानान्तर ऊपर से नीचे की जाती है व यह तरीका मृदा व जल क्षरण का एक मुख्य कारण है। यदि समस्त कृषि कार्य एवं बोआई–रोपाई ढाल के अभिलम्ब दिशा में समोच्च रेखा पर किया जाये तो मृदा व जल क्षरण को काफी हद तक कम या रोका जा सकता है। इस विधि में जुताई करते समय ढाल के विपरीत दिशा में सूक्ष्म अवरोधों का निर्माण होता है जो मृदा व जल क्षरण को रोकने में सहायक होता है। मृदा व जल संरक्षण के अतिरिक्त समोच्च खेती मृदा की उर्वरता का भी संरक्षण करती है जिससे फसलों की उपज में वृद्धि होती है।

समतलीकरण एवं मेड़बन्दी

उबंड़–खाबड़ भूमि पर वर्षा जल का वितरण कहीं आवश्यकता से अधिक तो कहीं पर आवश्यकता से बहुत कम होता है। ये दोनों ही स्थितियां फसल उत्पादन के लिये बहुत प्रतिकूल है। खेत के समतलीकरण द्वारा वर्षाजल वितरण की इस असमानता को दूर किया जा सकता है। बहुत

उबड़–खाबड़ भूमि में समतलीकरण का कार्य किश्तों में 2 से 3 साल में किया जा सकता है । ऊचें स्थानों से मिट्टी को काट कर निचले स्थानों में जमा करके समतलीकरण का कार्य पूरा किया जा सकता है। समतल सतह से जल का बहाव कम होने के कारण वर्षाजल भूमि में अधिक मात्रा में रिसता है व नमी गहराई तक बनी रहती है। खेत के चारों ओर मेड़ न होने से वर्षा जल अनियन्त्रित रुप से बहकर मृदा का अपरदन कर खेत में अवनालिकायें (Gullies) विकसित कर भूमि को खराब कर सकता है। अतः खेत को समतल कर चारों ओर न्यूनतम 50 सेमी से 60 सेमी ऊची मेंड़ बनाकर वर्षाजल, पोषक तत्व, खाद व बीज को बाहर जाने से रोका जा सकता है। मेड़बन्दी का मुख्य उद्देश्य खेत का पानी खेत में रहना चाहिये।

समोच्च बांधन / वानस्पतिक अवरोध

जिन बड़े खेतो में अधिक ढ़लान के कारण समतलीकरण सभंव नहीं होता है वहां ढ़लान के अभिलम्ब दिशा मे मिट्‌टी के समोच्च अवरोध बनाकर वर्षाजल के बहाव व मृदा क्षरण को रोका जा सकता है। समान्यतः दो समोच्च अवरोधों के मध्य 60 से 70 मीटर की दूरी रखी जाती है जो स्थानीय वर्षामान व ढ़लान पर निर्भर करती है। समोच्च अवरोध 0.75 से 1 मीटर ऊँचे व 1 से 1.5 मीटर चौड़े आधार के बनाये जा सकते है। इन अवरोधों को अधिक मजबूती प्रदान करने के लिये इन पर स्थानीय वनस्पति जैसे मूंजा, सेवण आदि को लगाया जा सकता है। पानी के बहाव के मार्ग में इन अवरोधों के होने के कारण पानी को भूमि में रिसने के लिये अधिक समय मिलता है व खेत में एक समान नमी बनी रहती है। समोच्च अवरोधों का निर्माण कार्य हमेशा खेत के ऊचें स्थानों से आरम्भ करके निचले स्थानों पर समाप्त किया जाता है लेकिन समोच्च अवरोध सदैव ढ़लान के अभिलम्ब दिशा मे ही बनाये जाते है । समोच्च बांधन के निर्माण के लिये मिट्टी को ढ़लान के ऊपर के स्थान से काट कर निचले स्थान पर जमा किया जाता है। प्रत्येक वर्षा के बाद समोच्च अवरोधों का निरीक्षण किया जाना चाहिये एवं किसी भी प्रकार की दरार या धंसने की स्थिती में समोच्च बांधन की तुरंत मरम्मत कर देनी चाहिये। समस्त कृषि कार्य यथा जुताई आदि ढ़लान के अभिलम्ब दिशा मे करने चाहिये।

समोच्च नाली

यह तकनीक प्रायः बंजर भूमि या चारागाह से उत्पादन प्राप्त करने के लिये प्रयुक्त की जाती है। इस तकनीक के तहत अधिक ढ़लान वाले खेत या चारागाह में ढ़लान के अभिलम्ब दिशा में समोच्च नाली बनायी जाती है। नाली से निकाली गई मिट्‌टी ढ़लान की तरफ मेड़ के रुप में डाल दी जाती है। वर्षा होने पर सतही बहाव इस नाली में इकठ्ठा हो जाता है जो पौधों को लगाने के लिये प्रारम्भिक अवस्था में बहुत लाभदायक सिद्ध होता है। ढ़लान की तरफ बनाई गई मेंड़ बहते पानी के मार्ग में अवरोध का कार्य करती है। सामान्यतः नाली 0.30 से 0.40 मीटर गहरी व 0.60 से 0.80 मीटर चौडी बनाई जा सकती है। दो नालियों के मध्य 60 से 90 मीटर का अन्तराल पर्याप्त होता है। समोच्च नाली तकनीक विशेषतः ढ़लान वाले चारागाहों मेंं वृक्ष व घास स्थापित करने में काफी सहायक होती है।

खेत में तालाब की तलछट का प्रयोग

बलुई मिट्‌टी में जल धारण क्षमता बहुत कम होती है इस कारण वर्षा का अधिकांश जल गहरे अन्तः स्त्राव के द्वारा बिना उपयोग के नीचे चला जाता है। वर्षाकाल के दौरान बहाव के साथ तालाबों में चिकनी काली मिट्‌टी जमा हो जाती है। इस मिट्‌टी की जल धारण क्षमता बलुई मिट्‌टी

की अपेक्षा ज्यादा होती है। अतः गर्मियों मे तालाबों के खाली होने के बाद इनकी सतही काली मिट्टी को खेतों में बिछा देने से खेतों की बलुई मिट्टी की जल धारण क्षमता बढ़ाई जा सकती है व पानी अधिक समय तक फसलों के उपयोग के लिये भूमि में उपलब्ध रहेगा ।

अच्छे जमाव, पौधों की बढ़वार तथा अधिकतम उपज के लिये खेत की जुताई एक आवश्यक कृषि कार्य है। इससे खेत में खड्डे, खरपतवार, मिट्टी में छिपे हानिकारक कीट आदि नष्ट हो जाते है और जैव पदार्थो का भूमि में मिलाव अच्छी तरह से हो जाता है। मिट्टी भुर–भुरी हो जाने से जड़ों का विकास भी अच्छी तरह से होता है और मिट्टी की जलधारण क्षमता बढ़ जाती है। खरीफ में आवश्यकता से अधिक जुताई करने पर तेज हवाओं द्वारा मिट्टी एंव नमी का ह्रास होता है अतः जुताई करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि खेत की तैयारी एवं बुआई के बीच कम समय अन्तराल हो । बुआई के लिये अच्छी तरह खेत तैयार करने के लिये स्वीप कल्टीवेटर द्वारा एक जुताई बरसात के समय तथा एक जुताई बुआई से पहले पर्याप्त होती है। जुताई हमेशा खेत के ढाल के अभिलम्ब दिशा में करनी चाहिये। इससे मृदा क्षरण व जल के बहाव में काफी कमी आती हैं। संरक्षित व उचित जुताई द्वारा मृदा व नमी के ह्रास में कमी आती है व उर्जा का अपव्यय भी कम हो जाता है।

पट्टीदार सस्यन

पट्टीदार सस्यन (Strip cropping) भूमि एवं जल संरक्षण के दृष्किोण से मरुक्षेत्र में बहुत ही उपयोगी है। इसमें विभिन्न बढ़वार व स्वभाव वाली फसलों की निश्चित कतारों की पट्टियां एकांतर क्रम में खेत में बोयी जाती है। अनुसंधान के आधार पर यह ज्ञात हुआ है कि यदि तिल की चार कतारों के साथ मोठ की 6 कतारों की पट्टियां एकांतर क्रम में बोयी जायें तो अधिकतम लाभ मिल सकता है। इसी प्रकार सेवण घास के साथ खरीफ में दलहनी फसलों (मूंग, मोठ, ग्वार) के पट्टीदार सस्यन से वायु द्वारा मृदा क्षरण को रोकने के साथ–साथ प्रति इकाई क्षेत्र से उपज भी अधिकतम प्राप्त होती है। इस प्रकार मरु क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के सस्यन से अधिकतम उपज एवं लाभ प्राप्त किया जा सकता है। जल संरक्षण की ऊपर दी गई विधियों के सफल प्रयोग से खरीफ की फसलों की अच्छी उपज के साथ–साथ रबी की फसलों की बुआई के लिए भी नमी मृदा में संरक्षित रहती है।

सतही पलवार

शुष्क क्षेत्रों में उच्च तापमान के द्वारा तीव्र वाष्पीकरण होता है जिससे मृदा में व्याप्त नमी का तेजी से ह्रास होता है व पौधे नमी के अभाव में सूखने लगते है। अतः संचित नमी को बचाये रखने के लिये खेत से निकाले गये खरपतवार व अन्य घास–फूस से सतह पर की गई पलवार मृदा के वातीय व जलीय क्षरण तथा मृदा नमी को बचाने में काफी सहायक होती है। सतही पलवार से भूमि के तापमान में कमी आती है फलस्वरुप जल वाष्पन कम हो जाता है। सतही पलवार के रुप में उपलब्धता के आधार पर फसलों के अवशिष्ट अंश, पत्तियां, सूखी घासें, लकड़ी का बुरादा या पालिथीन की चादरें काम में ली जा सकती हैं। लगभग 6 टन प्रति हैक्टर की दर से घास की पलवार लगाने से फसलों की उत्पादकता दुगनी की जा सकती है।

उचित फसलों का चुनाव व समय पर बुआई

मरुस्थलीय क्षेत्रों में फसलोत्पादन पूरी तरह से वर्षा पर निर्भर करता है अतः इन क्षेत्रों में फसलों का चुनाव करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि